06 खेल बनाम शिक्षा : दूरी समाप्त करने का समय

नन्दन कामथ

लम्बे समय से पेशेवर खेल और औपचारिक शिक्षा व्यवस्था एक–दूसरे से विमुख रहे हैं। आज के निरन्तर व्यस्त और प्रतियोगी वातावरण में समय आ गया है कि ये दोनों संसार एक–दूसरे के निकट आएँ, एक–दूसरे के पूरक बनें तथा आपसी शंका के माहौल को छोड़कर आगे बढ़ें।

सीमित उपलब्ध अवसरों के हमारे देश में खेलकूद और शिक्षा को ऐतिहासिक रूप से ऐसे दो बिल्कुल भिन्न और समानान्तर संसारों के रूप में देखा जाता रहा है जिनके पास एक दूसरे को देने के लिए अधिक कुछ न हो। यह मानसिकता हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोणों और व्यवस्था की औपचारिक संरचना का भी हिस्सा बन चुकी है। असल में तो इनमें से प्रत्येक की माँगों और जरूरतों को इस रूप में देखा जाता रहा है जैसे वे दूसरे क्षेत्र में एक व्यक्ति द्वारा अपनी सम्भावनाओं को पूरी तरह हासिल करने की क्षमता पर एक अनचाहा भार हों। वर्तमान समय में, जब सम्पूर्ण व्यक्तिगत विकास, वृहत्तर जागरूकता और शोध के लिए अधिक संसाधन उपलब्ध हैं, यह निरन्तर स्पष्ट होता जा रहा है कि यदि हमें ऐसा जनसमुदाय चाहिए जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का सामाजिक और व्यक्तिगत, दोनों स्तरों पर समानान्तर विकसित कर पाए, तो इन दोनों पूरक क्षेत्रों को आपस में टकराना होगा। शिक्षा और व्यक्तिगत विकास का एक व्यापक दृष्टिकोण हमारे देश के पेशेवर एथलीटों को इस रूप में मदद देगा कि वे उच्चतम स्तर पर प्रतियोगी भावना के साथ बेहतर प्रदर्शन करते हुए जीत हासिल करने के लिए अनेक कौशल विकसित कर पाएँगे।

'खेलकूद या शिक्षा' से 'खेलकूद और शिक्षा' तक

एक औसत भारतीय बच्चे को बहुत छोटी आयु में ही कुछ सांस्कृतिक सन्देश बहुत ही स्पष्ट तौर पर दे दिए जाते हैं – जैसे यह, कि यदि उसे प्रतियोगिता में टिके रहना है तो उसे 'यह' या 'वह' के लहजे में एक विकल्प का चयन करना होगा। एक सन्देश यह भी है कि अकादमिक गतिविधियों को "गम्भीरता" से लिया जाना आवश्यक है।

जिन बच्चों का सम्बन्ध औपचारिक खेलकूद विकास कार्यक्रमों से नहीं है, उनके लिए खेलकूद का मतलब केवल खेलना और मौजमस्ती करना है। खेलकूद उनके लिए बस व्यक्तिगत बौद्धिक और पेशेवर उन्नति से थोड़ा विराम लेकर मनोरंजन करना है। परम्परागत रूप से कम ही नियम हैं जो भारत में प्राथमिक और हाईस्कूल पाठयचर्या में शारीरिक शिक्षा को एक अनिवार्य और आवश्यक तत्व बनाते हों। इसके चलते शैक्षणिक संस्थान – और अभिभावक भी – ऐसी स्थिति में आ पहुँचते हैं जहाँ स्वेच्छा पर आधारित 'खेल' को प्रतियोगिता की दृष्टि से प्रतिकूल अवस्था माना जाता है।

स्कूल में – और स्कूल के बाद भी – बच्चों से कई तरह की अकादमिक अपेक्षा रखी जाती हैं। और इसके बाद बच्चों के पास खेल सम्बन्धी अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कम ही समय और ऊर्जा बचते हैं, फिर वह चाहे शौक या मनोरंजन के रूप में ही क्यों न हो।

औपचारिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में छोटे बच्चों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। शिक्षाशास्त्रियों, प्रशासकों – और कुछ अभिभावकों में भी – शारीरिक और मानसिक दृष्टि से खेलकूद की आवश्यकता के बारे में जागरूकता का प्रायः अभाव पाया जाता है। यही अभाव खेल के मैदान से मिलने वाले महत्वपूर्ण सबकों के सन्दर्भ में भी पाया जाता है। इसी का नतीजा है कि अकादमिक शर्तों, ढाँचों और संस्थानों में लचीलेपन का अभाव रहता है, और प्रतिभावान खिलाड़ियों के लिए ये सब बातें स्थिरता प्रदान करने की बजाय बाधा के रूप में कार्य करने लगती हैं। उपस्थिति की अनिवार्यता, काम के भारी दबाव और कठोर परीक्षा कार्यक्रम के चलते लचीलेपन की गुंजाइश बहुत कम रहती है और अलगाव की भावना पनपने लगती है। 'सबके लिए खेल' का उद्देश्य है कि अधिक से अधिक भारतीय सभी स्तरों पर खेलों से जुड़ें, उनमें टिके रहें और सफल भी हों – उपरोक्त हालात इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लगातार एक चुनौती की तरह बने रहते हैं।

औपचारिक शिक्षा का परिप्रेक्ष्य

भारतीय शिक्षा प्रणाली का ध्यान मुख्यतः साक्षरता और अंकज्ञान पर केन्द्रित रहा है। ऐतिहासिक तौर पर अधिक जनसंख्या, बेरोजगारी, निर्धनता और सीमित अवसर वाले किसी राष्ट्र के लिए ये तर्कसंगत प्राथमिकताएँ हैं। खेलों को प्रायः हाशिए पर रखा जाता है और उनका मूल्य कुछ

अधिक नहीं समझा जाता। उन्हें पाठयक्रम से इतर एक गैर–शैक्षणिक, समय के अनुत्पादक उपयोग वाली गतिविधि के रूप में लिया जाता है। उनका महत्व बस मनोरंजन के तौर पर ही रहता है; अनिवार्य "आधारभूत" विषय के रूप में उन्हें लागू नहीं किया जाता। प्राथमिकता न मिलने के चलते और सापेक्ष जरूरत के अभाव के कारण ज्यादातर स्कूलों में मौलिक खेलकूद सुविधाओं और योग्य प्रशिक्षण प्रतिभाओं की कमी है। स्वाभाविक है कि इस सबके चलते एक औसत भारतीय बच्चे के लिए खेलों में एक बहुत ही कमजोर बुनियाद पड़ती है। बच्चे के प्रतिनिधि – अभिभावक – भी प्रायः यही मोलभाव करते हुए पाए जाते हैं। परन्तु अब समय बदल रहा है।

नवीनतम अनुसंधान ने इस "अथवा–या" की विचार प्रक्रिया को सिर के बल खड़ा कर दिया है अनेक महत्वपूर्ण बाल–विकास अध्ययन मानते हैं कि शारीरिक शिक्षा और खेल गतिविधियों में नामांकित विद्यार्थी न केवल तंत्रिका–प्रेरक/गत्यात्मक कौशलों में सुधार कर पाते हैं बल्कि अपने अध्ययन समय का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग भी करते हैं। वे अधिक बेहतर तरीके से ध्यान केन्द्रित कर पाते हैं और शारीरिक रूप से सक्रिय न रहने वाले विद्यार्थियों से बेहतर प्रदर्शन न कर पाएँ तो भी उनकी अकादमिक उपलब्धियों के बराबर तो पहुँच ही पाते हैं।

समग्र व्यक्तिगत विकास की इस अवधारणा को एन.सी.ई.आर.टी. की राष्ट्रीय पाठयचर्या रूपरेखा 2005 में मान्यता दी गई है। यह अनिवार्य पाठ्यचर्या डिजाइन की आवश्यकता की बात करता है जो "स्वास्थ्य की समग्र परिभाषा को इख्यितार करे जिसके तहत शारीरिक शिक्षा और योग का बच्चे के शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक, और मानसिक विकास में योगदान रहे।'' इसमें आगे कहा गया है कि "पाठ्यचर्या को प्रभावी ढ़ंग से लागू करने के उद्देश्य से यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि प्रत्येक स्कूल में खेलकूद के लिए न्यूनतम अनिवार्य स्थान और उपकरण उपलब्ध रहें और डॉक्टर तथा चिकित्साकर्मी नियमित रूप से स्कूल में जाँच करने जाएँ। इस क्षेत्र में शिक्षकों की तैयारी के लिए बेहतर नियोजन और सघन प्रयासों की आवश्यकता है।"

भारत की शैक्षणिक व्यवस्था जैसे–जैसे बदलाव को लागू करने की ओर बढ़ती है, ध्यान इस बात पर होना चाहिए कि खेल सबके लिए हों। स्कूल में बेहतर खेल सुविधाएँ, शिक्षक–प्रशिक्षण, अभिभावक–परामर्श, प्रारम्भिक सहज योग्यताओं और रूझानों का परीक्षण और कौशल–वृद्धि मुख्य विशेषताएँ होंगी। इसके साथ ही रूढ़िवादी और कठोर अकादमिक ढाँचों का स्थान उन ढाँचों को लेना होगा जो बच्चों के सीखने और व्यक्तिगत विकास में खेलों के योगदान के प्रति अधिक सतर्क और जागरूक हों। इन कदमों से प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतर/पेशेवर शैक्षणिक संस्थानों तक खेलों के लिए माँग–आधारित दबाव भी बन पाएगा।

पेशेवर–खेल परिप्रेक्ष्य

हम भारतीय अभी हाल के वर्षों में ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न खेलों में प्रतियोगिता की स्थिति में आने और सफल होने में सक्षम हुए हैं। इससे पहले हमारी उपलब्धि के न्यून स्तर के लिए अनेक कारणों को जिम्मेदार ठहराया जाता रहा है – 'खेल संस्कृति' और 'शारीरिक विशेषताओं' का अभाव इस सूची में शीर्ष पर हैं। हमारी खेल और शिक्षा व्यवस्था द्वारा श्रेष्ठ खेल प्रतिभाओं की पहचान न कर पाने और जो प्रतिभाएँ पहले ही शीर्ष पर चमक रहीं है, उन्हें पोषित न कर पाने का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान है।

खेल को करियर के तौर पर अपनाने के साथ बड़े जोखिम जुड़े हैं। इसके लिए औपचारिक शिक्षा व्यवस्था को त्यागना पड़ सकता है। सहायता और पुरस्कार भी सीमित ही होते हैं। इसलिए खिलाड़ी अपने समक्ष उपस्थित जोखिमों के अनुरूप सम्भावनाएँ नहीं देख पाते हैं। खेल में प्रतिभा–सम्पन्न जिन व्यक्तियों के पास अन्य विकल्प उपलब्ध होते हैं, वे उनकी ओर चले जाते हैं; जो साहस बटोरकर खेलों में अपने सपने को पूरा करने में लगे रहते हैं, उनके पास बस सार्वजनिक क्षेत्र में नौकरी से प्राप्त आय और सरकारी पुरस्कारों की अनिश्चितता के अतिरिक्त बहुत कुछ नहीं रहता। इसलिए हैरत नहीं कि खेल के मैदान पर हमारी श्रेष्ठ खेल–प्रतिभाएँ नहीं उतर रही होतीं और हमारे बेहतरीन खिलाड़ी ऐसे वातावरण में प्रशिक्षण लेते और संघर्ष करते हैं जो उन्हें क्रियात्मक रूप से शक्तिहीन और पेशेवर रूप से असुरक्षित रखता है।

खिलाड़ियों में शिक्षा के अभाव के अन्य नकारात्मक प्रभाव भी हैं–खेलों के प्रशासनिक अधिकारियों के मुकाबले उनके पास बातचीत और सौदेबाजी करने की बहुत कम क्षमता होती है, डोपिंग और पैसे के लेनदेन आदि जैसे हेराफेरी के तौर–तरीकों से बचे रहने की भी कम क्षमताएँ होती हैं, और रिटायरमेन्ट के बाद करियर की सम्भावनाएँ भी बहुत सीमित होती हैं।

अभी हाल में 'गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन' ने एक शोध–अध्ययन

के तहत अनेक ऐसे भूतपूर्व खिलाड़ियों पर एक सर्वेक्षण किया जिन्होंने अपनी प्रतिभा के चरम पर पहुँचने से पहले ही खेलों के करियर को छोड़ दिया। इस अध्ययन का निष्कर्ष है कि खिलाड़ियों ने प्रतियोगी खेलों को समय–पूर्व त्यागने के सबसे प्रमुख कारणों में 'करियर का अव्यावहारिक होना' और 'शैक्षणिक तथा अभिभावकों का दबाव' को जिम्मेवार ठहराया है। अधिकतर खिलाड़ियों ने 18 से 22 वर्ष की आयु में खेल को करियर के तौर पर छोड़ा जब खेलकूद या अध्ययन में से एक का चयन एक कड़वी सच्चाई के रूप में सामने आया ।

भारत में खेल–उद्योग में पेशेवर प्रशासन की भूमिका बढ़ने और हमारे देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति के चलते इन स्थितियों में बहुत तेजी से बदलाव हो सकता है। आज क्रिकेट पूरे देश में सैकड़ों खिलाड़ियों को न केवल व्यावहारिक बल्कि आकर्षक करियर उपलब्ध करवाता है। अभिभावकों को आज इस बात के लिए सहमत करना सम्भव है कि उनके बच्चे क्रिकेट को भी उसी प्रकार एक करियर के रूप में चुन सकते हैं जैसे एक डॉक्टर या वकील का पेशा। सम्भावना और वास्तविकता के बीच विशाल अन्तर के बावजूद अन्य खेलों में भी बदलाव अवश्यम्भावी है। शैक्षणिक संस्थान और औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा पद्धतियाँ खेल प्रतिभाओं की पहचान और उनकी सहायता करने में, तथा जीवन–कौशल विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

संगम की रूपरेखा

खेलकूद या शिक्षा लम्बे समय तक एक–दूसरे से विमुख नहीं रह सकते। यह स्थिति दोनों को कमजोर बना रही है। इस संगम की ओर बढ़ना चाहे तत्काल सम्भव न हो लेकिन वह निम्नलिखित दिशा में आकार ले सकता है–

- विश्वस्तरीय शैक्षिक मानदण्ड और प्रतिस्पर्धा की भावना शहरी क्षेत्र में स्थित स्कूलों और कालेजों को इस ओर धकेलेंगे कि वे खेल सुविधाओं, ढाँचागत व्यवस्थाओं और कार्यक्रमों को ऐसी विशेषताओं के रूप में उपयोग करने के लिए बाध्य हों जिससे वे प्रतिस्पर्द्धा में अलग खड़े दिखाई दें। ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूल भी धीरे–धीरे इस ओर बढ़ेंगे, फिर चाहे उनकी सुविधाएँ बहुत अल्पविकसित ही क्यों न हों।
- स्वास्थ्य सम्बन्धी राष्ट्रीय सरोकार (जिनमें बच्चों में बढ़ते मोटापे की समस्या भी शामिल है), प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल पाठ्यचर्या में अनिवार्य शारीरिक शिक्षा को शामिल करने के लिए बाध्य करेंगे।

  विश्वविद्यालय स्तर के खेलकूद और एथलेटिक्स कार्यक्रम रूप–आकार लेंगे जिनके तहत प्रतिभावान खिलाड़ी खेलों में अपने विकास को जारी रखते हुए पेशेवर शिक्षा के लचीले लेकिन अर्थपूर्ण मौके हासिल कर पाएँगे।
- बेहतर शिक्षा प्राप्त खिलाड़ी कहीं अधिक सुरक्षित,

आत्मविश्वासयुक्त और अपनी सम्भावनाओं को पूरा करने में सक्षम होंगे। उनमें से बहुतों के पास करियर पश्चात अवसर उपलब्ध होंगे और वे नई प्रतिभाओं में शिक्षा की भूमिका के प्रति प्रोत्साहन और प्रेरणा तथा सम्मान उत्पन्न करेंगे।

अर्थव्यवस्था और बाजार की कार्यप्रणाली तो इस अन्तर को आंशिक रूप से कम करेंगे, राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर विचारशील नीति निर्माण, शिक्षा और खेलों के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करने के कार्यक्रम और बड़े पैमाने पर निवेश भी इसके लिए महत्वपूर्ण तत्व होंगे। साथ ही इस सबकी सफलता में आस्था का होना भी आवश्यक है। शिक्षा और खेल के बीच के इस अन्तर का कम होना अवश्यम्भावी है, लेकिन यह कितना जल्दी, कितने बेहतर तरीके से और कितनी लागत पर होगा, यह इस नई पीढ़ी पर निर्भर है।

नन्दन कामथ *खेलों के क्षेत्र के एक वकील और 'गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन' में ट्रस्टी हैं। 'गो स्पोर्टस फाउण्डेशन' एक गैर–लाभकारी संगठन है जो महत्वपूर्ण वित्तीय और गैर–वित्तीय सहायता के माध्यम से भारतीय खेल प्रतिभागियों के सशक्तीकरण के लिए काम करता है। 'गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन' के बारे में अधिक जानकारी के लिए www.gosportsfoundation.in पर जाएँ।*